Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2025 E-Journal, Volume I, Issue XLIX, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

महिला कथाकारों के उपन्यासों में मानवीयता

डॉ. राजेश श्रीवास*

* सहा.प्राध्यापक (हिन्दी) सेठ फूलचंद अग्रवाल स्मृति महा., नवापारा (राजिम) रायपुर (छ.ग.) भारत

प्रस्तावना – साहित्य मनाव–मानस की विशिष्ट एवं रमणीय अनुभूति है। 'साहित्य का पहला अंग है –भाव, जिसके लिए कल्पना का योगदान अपेक्षित है, परन्तु कल्पना ऐसे जो अनुभूति के आधार पर निर्मित हो।'[1] इसी यथार्थानुभूति की विशिष्ट व्यंजना करने वाला साहित्यिक रूप–विधान कथा (उपन्यास, कहानी) साहित्य है। इसीलिए इसमें ह्रदय को स्पंदित करने की शक्ति होती है। मानव–चेतना समाज–सापेक्ष हुआ करती है और उपन्यास, कहानी–जो मानव चेतना का संवाहक है–नितांत समाज–निरपेक्ष हो ही नही सकता, वह तो जीवन की परिकल्पनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके द्धारा जीवन के सौंदर्यात्मक और आनंदात्मक पक्ष का उद्धाटन होता है। 'साहित्य के सृजन में साहित्यकार के संस्कार, पारिवारिक वातावरण उसके मानस–पटल पर अंकित प्रभाव तथा इस प्रभाव के द्धारा निर्मित विचारधारा और मान्यताओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है।'[2] क्योंकि किसी भी साहित्यकार का जीवन तथा साहित्य संस्कार, अनुभूतिजन्य मान्यताओं एवं विचारधाराओं का उनके साहित्य पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। इसीलिए किसी भी साहित्यकार के साहित्य को समझने के लिए उसके जीवन एवं व्यक्तित्व से भली–भाँति परिचित होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उसका संपूर्ण जीवन किसी न किसी रूप में उसकी रचनाओं में अवश्य प्रतिबिम्बित होता है।

आज के संघर्षशील, यथार्थवादी युग में जीने वाली नारी का दृष्टिकोण उसके पारिवारिक एवं सामाजिक परिपेक्ष्य में परखने के लिए समाज और परिवार को लेकर पनपी अभिनव मान्यताओं की चर्चा कर लेना युक्तिसंगत होगा। भारतीय समाज की संरचना आदिकाल से पुरूषप्रधान रही है। मातृप्रधान समाज के दर्शन यदा–कदा ही मानव–इतिहास में होते है। परन्तु समय परिवर्तनशील होता है और साहित्य के क्षेत्र में सदा ही परिवर्तित समय की प्रतिच्छवि अंकित की जाती रही है। स्वतंत्रता–पूर्व तक के हिंदी कथा–साहित्यों में नारी को घर की चहारदीवारी में सीमित रखकर समाज में उसकी महत्ता, पुरूष सापेक्ष चित्रित की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश की सामाजिक व आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय परिवर्तन आये हैं। आज परिवार एवं समाजविषयक अनेक प्राचीन मान्यताएँ टूटती जा रही है और उनका स्थान नयी मान्यताएँ लेती जा रही है। आधुनिक कथा–साहित्य की विधा इस नवीनता और प्राचीनता के संधि–स्थल की ओर संकेत करने में सतत गतिमान है। पारिवारिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी की मानसिकता को विविध रूपों में रेखांकित करने की चेष्टा आलोच्य वर्षो के उपन्यास–कहानियों में परिलक्षित होती है। विगत दो से तीन दशकों का समय नारी की पारिवारिक और सामाजिक मान्यताओं में होने वाले परिवर्तनों का काल रहा है। वैसे तो यह परिवर्तन स्वतंत्रता संघर्ष के समय से ही दृष्टिगोचर होने लगा था। किन्तु पाँचवे दशक के उपरांत देश के सामाजिक गतिविधियों में बड़ी तेजी से परिवर्तन आया, जो नारी सशक्तिकरण का दौर था। यही वह समय था, जब महिला कथाकारों ने अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं, दुखः, दर्द, पीड़ा, संत्रास, कुंठा, घरेलू अत्याचार जैसी अमानवीय घटनाओं पर खुलकर समाज के सम्मुख अपने उपन्यास, कहानियों के माध्यम से बात रखने की साहस की। और अपने अनुभूति की प्रखर अभिव्यक्ति में वे काफी सीमा तक आज सफल भी हो सकी। उन महिला कथाकारों में –महादेवी वर्मा, मन्नू भण्डारी, ममता कालिया, अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती, शिवानी, उषा प्रियंवदा, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, मधु कांकरिया, मृदुला गर्ग, डॉ. उर्मिला शुक्ल, डॉ. जया जादवानी, श्रद्धा थवाईत, शुभ्रा ठाकुर, डॉ. नलिनी श्रीवास्तव आदि जैसे साहित्यकारों ने परिवार, समाज में घुट रही नारी आवाज को बुलंद की। इस प्रकार आधुनिक महिला कथाकारों की लेखनी ने नारी के उस रूपाभाव को उजागर किया है जो अंधेरी बंद कमरे में सिसक रही थी। महादेवी वर्मा का नारी चिंतन व लेखन नारी वेदना और आत्म–पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ इसीलिए शिक्षा पर भी जोर देता है। महादेवी वर्मा नारी के अधिकारों के प्रति हमेशा सजग व पक्षधर रही है। उन्होंने हमेशा नारी के सम्मान और बराबरी के अधिकारों के लिए पुरजोरता से आवाज उठाई है। नारी अधिकारों पर अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहती है कि 'हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरूषों क निकट कोई उपयोग नही है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नही बन सकेंगी।'[3] महादेवी वर्मा ने नारी के शिक्षित होने पर बल दिया है। उनका मानना है कि नारी को यदि सम्मान जनक स्थान प्राप्त हो सकता है तो शिक्षा के माध्यम से ही।

समकालीन परिवेश में न सिर्फ नारी के संघर्षो, चुनौतियों को व्यक्त किया है बल्कि उसकी संवेदनाओं से गहरे जुड़ते हुए नारी मन में विश्वास की रोशनी से सराबोर करने का प्रयास हुआ है। मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में चित्रित नारी आज समाज की संरचना में पुरूष के समकक्ष होने का दावा करती है। 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास की रंजना मध्यकालीन भारतीय नारी की मानसिकता में जीने वाली नारी है। संपूर्ण निष्ठा के साथ प्यार समर्पण करना अपना दायित्व समझती है। प्रतिदान स्वरूप पति का संपूर्ण प्यार पाना अपना अधिकार मानना रंजना की स्वभावगत विशेषता है। वह सुशिक्षित एवं सुन्दर है। सामान्य परिवार का होकर भी अपने परिक्षम से

कॉलेज में प्राध्यापिका है और अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक स्वतंत्रता का निर्णय भी स्वंय लेती है। वह अपना जीवनसाथी अमर को बना चुकी है। घरवालो की किसी प्रकार की बाधा अपने विवाह के संबंध में अस्वीकार है। परन्तु अमर की महिला मित्र अमला को लेकर अंतिम सीमा तक विरोध बढ़ जाती है। और बात टुट कर ही रहती है। यहाँ रंजना एक साहसी एवं स्वतंत्र निर्णय लेने वाली नारी के रूप में उपस्थित होती है। जिस साहस के साथ उसने अमर के लिए पिता का घर त्याग दिया था, उसी साहस के साथ अपने प्यार एवं स्वाभिमान की रक्षा के लिए अमर का भी परित्याग करके चली जाती है। अमर उसकी मानसिकता की व्याख्या करता हुआ कहता है-'उसने शुरू से ही अपने आस-पास देखा है कि पति नौकरी करता है। इसके बाद दोनों या तो कहीं घुमने, सिनेमा चले जाते है या किसी को बुला लेते है। .....अब उसे न मेरे मित्र पसंद है न मेरा व्यवहार, न मेरी दिनचर्या। मेरे पुरूष मित्र उसे पसंद नही है और महिला-मित्रों से वह ईर्ष्या करने को विवश है.....दूसरे पति के महिला-मित्रों से ईर्ष्या करने की परम्परा है। वह तो साफ कहती है यह मित्र क्या चीज है ? या तो पत्नी होती है या बहन-भाभी।'[4] रंजना, अमर को संपूर्ण मन की गहराई से प्रेम करती है परन्तु जिस क्षण इस निष्ठा में व्याघात अनुभव करती है किसी साहसी नारी की तरह-अपना मार्ग स्वयं तय कर नये जीवन पथ पर बढ़ जाती है।

सूक्ष्म संवेदनशीलता के धरातल पर नारी का वास्तविक मन अपनी पूरी गहराई के साथ शिवानी के उपन्यास 'कृष्ण कली' में चित्रित हुआ है। नारी-मन की गहरी पकड़ शिवानी में है, और वे अपनी सजग दृष्टि से परिवेश को यथार्थ के धरातल पर अंकित करने में सक्षम है। 'कृष्ण कली' में शिवानी ने नारी की मानसिकता को आंतरिक एवं बाह्य धरातलों पर बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उपन्यास में अवचेतन की रहस्यात्मकता की थाह पाने के लिए शिवानी का नारी-मन सदैव सचेत रहा है। उपन्यास में एक ओर जहाँ रोमांस से ओत-प्रोत, स्नेह ओर ममता से भीगी हुई नारी का चित्रण है तो दूसरी ओर मानसिक वृत्तियों की जटिलता से जूझती नारी का भी सशक्त चित्रण है। कृष्ण कली, उपन्यास की प्रमुख नारी-पात्र है। 'कली' का जन्म और परवरिश दोनों ही अस्वाभाविक परिस्थितियों में हुए है जिसका कुप्रभाव कली के मानस पर गहरे पड़ता है। कली के चरित्र की ये दुर्बलताएँ कुछ तो उसकी आत्मकुंठा का परिणाम थी कुछ उसे अपनी जन्मदात्री से विरासत में भी मिली थी। कली अपनी विद्रोहणी नारी को लिए अपने अन्तस् की ज्वाला से सारे संसार को फूँकना चाहती थी, संसार के लिए 'बुरी लड़की' बनना अपनी नियति मानने को उसका निष्कलुष हृद्य तैयार नहीं होता, इसे भूलने के लिए वह मसान साधती है, गांजा चरस पीती है, हिप्पियों की गाईड बन उनकी प्रमोद-लीला की प्रेरणास्त्रोत बनती है। कली का मादक सौन्दर्य किसी को वासना की आग में झुलसा देने वाला है तो किसी के संतप्त हृदय पर शीतल प्रलेप का कार्य करता है। अपने अधिकारी शेखरन को वह रहस्यमयी ढंग से अनेक रूपों में प्रभावित करने की कोशिश करती है, परन्तु यह कली का दुर्भाग्य था कि पुरूष की लोलुप दृष्टि ने उसमें मादक सौन्दर्य को ही देख सकी, उसकी भूखी आत्मा को कभी नही देखा। इस संदर्भ में कली सोचती है -'क्या कभी भी कोई उसके अन्तर की व्यथा को नही जान पायेगा ? कोई मुग्ध दृष्टि से उसकी बड़ी-बड़ी आँखों को ही देखता रहता है, कोई निर्लज्ज दृष्टि का अदृश्य भाला उसके सुडौल वक्ष के आर-पार भेदकर उसकी वैकलैस चोली के बंधन शिथिल कर देता है। जितने भी लोलुप पुरूष, उतनी ही विभिन्न-विभिन्न दृष्टियाँ। पर क्या आज तक एक भी दृष्टि में उसे सच्चे-निश्छल स्नेह की ऐसी झलक मिल सकी है।'[5] यही निश्छल स्नेह की प्यास कली को दर-ब-दर भटकाती है। इस भटकाव का अंत प्रवीर के मोहपाश में पड़कर होता है। प्रवीर कली का सिद्धि-सोपान सिद्ध होता है। वह उसके समक्ष अपने हृदय की समस्त पवित्रता से आत्मा का दुख उड़ेल देती है। कली का अतीत गर्व करने लायक नहीं है, इस कारण वर्तमान का ऐश्वर्य भी उसे अतीत की घृणास्पद स्थिति में उबरने नही देता। यही कली की विडम्बना है। कली का आरंभ जितना वीभत्सता लिये था, अन्त उतना ही कारूणिक होता है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' में कृष्णा सोबती ने एक ऐसी लड़की (रत्ती) के अनुभवों की कहानी कही है जो बचपन में बलात्कार की शिकार हो जाती है। इस दुर्घटना के परिणाम स्वरूप वह अपने आस-पास के परिवेश को अपने प्रतिकूल पाती है। रत्ती के मनोमस्तिष्क में एक बद्धमूल मानसिक ग्रंथि है, जिसमें वह पूरी तरह गिरफ्तार है -'वह तीव्र इच्छा से भर उठती है और हताश हो अपने में ही लौट आती है। अपने से टकराती है, संघर्षरत होती है। लड़ाई लड़ती है कही बाहर नही, बाहरी शक्ति से नही, अपने से ही-गहरे में कही भीतर-अपनी ही मानसिक ग्रंथि से जिसके कारण वह सिर्फ एक चिथड़ा है जिससे वह एक बार भी समुची औरत नही बन पाती। हर बार कहीं पहूँच सकने की न मारने वाली चाह और हर बार वीरान वापसी अपनी ओर।'[6] कैशी उससे कहता भी है हमेशा अपने से अपने अन्दर लड़ने का कोई फायदा नहीं। पर रत्ती भीतर की लड़ाई को बाहर नही मोड़ पाती। इस मानसिक पीड़ा से छुटकारा पाने का अहसास रक्तिका को कुछ-कुछ असद भाई से मिलने पर होता है। असद से मिल कर वह असद की अकृत्रिम सहृदयता पा अपने आपकों मानों बदले हुए परिधान में पाती है। असद उसके पुराने खोल से मुक्ति दिलाने की शक्ति जुटाता कि इससे पूर्व ही उसकी अचानक मृत्यु रत्ती को एक बार फिर उसी पुरानी आंतरिक घुटन भोंगने को विवश कर देती है। असद के बाद रोहित, मुकुल, राजन, भानुराव, सुमेर सुब्रामनियम, श्रीपत अनेक पुरूष रत्ती की देह पर घात लगाये दिखाई देते है। प्रेम और सहृदयता का नाम लेकर ये सभी रत्ती की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाते है पर तुरंत ही वे उसे बिस्तर पर खींचने को बेताब दिखाई देते है। जब-जब रत्ती किसी पुरूष के संसर्ग में आती है वह एक काला जहरीला क्षण हर बार उसे झपट लेता है और रत्ती काठ हो जाती है। आधुनिक उपन्यास में स्त्री-पुरूष का संबंध भावात्मक धरातल पर ही गहराने की अपेक्षा अब नये आयामों के अनुरूप शारीरिक संपर्कों को लेकर ही अधिक मुखर हुआ है। किन्तु रक्तिका का मानस ही सारे फसाद की जड़ है। 'ममता कालिया' का 'बेघर' संजीवनी को इसीलिए 'बेघर' बनाता है, क्योंकि परमजीत संभोग के क्षणों में अपने को पहला पुरूष नही पाता। पुरूष द्वारा पहला होने की धारणा ही नारी के दुर्भाग्य का कारण बने यह हर स्थिति में आवश्यक नहीं। स्वयं नारी भी अपने आपसे इस लड़ाई में कहीं हारी हुई स्वयं को पाती है। रत्ती, सुब्रामनियम से अपनी इसी बेबसी का इकबाल करती है-'जिसने गरीबी को ओढ़ने के लिए कीमती कपड़े पहने हो, जिसके संबंधो की कोई रियासत न हो-दिखाने के नाम पर एक तेवर तक नही.....।'[7] मानों सारी बेबसी रत्ती की अपनी निर्मित की गई है। इस प्रकार 'सूरजमुखी अँधेरे के' अकेली रत्ती की ही कथा है जिसमें स्त्री के मन को परत-दर-परत उकेरने का प्रयास है। मानवीय-मन की नितांत उलझी हुई चाहत और जीवट भरे संघर्ष का संकेत रत्ती के जीवन का संघर्ष है।

भारतीय नारी की सामाजिक-आर्थिक विषमताओं से जन्मी मानसिक

यंत्रणा का अत्यंत मार्मिक चित्रण उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में देखने को मिलता है। छात्रावास के पचपन खम्भे और उसकी लाल दीवारों के सदृश्य ही अपनी हमचाही उलझनों में कैद सुषमा को एक घुटन का तीखा अहसास होता है। उन उलझनों को सुलझाने के लिए नील जैसा सुलझा हुआ युवक सुषमा के जीवन में सहभागी होने की इच्छा व्यक्त करता है किन्तु सुषमा का अन्तर्मन स्वयं अपनी ही खींची सीमा-रेखाओं में बँधा रहता है। इन परिस्थितयों के बीच जीना ही उसकी नियति बन गई है। आधुनिक नारी-जीवन की भी यही विडम्बना रही है कि वह जिन परिस्थितियों को स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं उन्हें ही झेलने की विवशता में उसे जीना पड़ता है। परम्परागत बंधनकारा से मुक्ति पाने की स्थिति का स्पर्श करने का चाव लेकर भी भारतीय नारी ऐसा आत्मसाहस नहीं जुटा पाती। यही उसके चरित्र का भावात्मक पहलू उसे दूसरों की तुलना में अकिंचन बना देता है। सुषमा छोटी बहिन नीरू का विवाह धूमधाम से कराती है और स्वयं नील के प्रणय-निवेदन को ठुकराने के लिए विवश कर दी जाती है।

सुषमा महाविद्यालय में इतिहास विभाग की लेक्चरार तथा गर्ल्स होस्टल की वार्डन है। तैंतीस वर्ष की आयु, अपाहिज पिता, छोटे भाई-बहिन तथा माँ की आर्थिक माँग को पूरा करने के निमित्त कर देती है। जीवन की भाग-दौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गये वे वर्ष-और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खिंच गई थी, दायित्व की, कुंठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की।'' '.....कभी-कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने उपर लिए सुषमा काँपने लगती। तब वह चाह उठती कि दो बाँहें उसे भी सहारा देने को हों। इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी सम्बोधन करें।'[8] नील की सबल बाँहे सुषमा के जीवन की नीरसता को रस-स्निग्ध बनाने के लिए आगे बढ़ती है किन्तु सुषमा की आत्मकुंठा उसे नील पर भरोसा नही करने देती है। सुषमा घर से दूर रह कर गर्ल्स कालेज में पढ़ाने और घर रूपया भेजने में ही अपने जीवन की पूर्णता मानने को विवश है। सुषमा का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व आत्मपीड़न में ही सुखानुभव करने का अभ्यस्त बन गया है। नील का संपूर्ण समर्पण भी उसमें साहस नही भर पाता है। अकेलेपन का दर्द उसकी नियति बन गया है। भारतीय समाज की यह स्थिति आज की नही है, बल्कि यह पुरूषवादी सोच का परिणाम है। महिला कथाकारों ने इसीलिए लेखनी से अपनी बात रखकर विकृत समाज में बदलाव लाना चाहती है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने भी अपनी रचनाओं में जहाँ एक ओर उत्पीड़न, यातना और अपमान का प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण किया है, वहीं उन्होंने आत्मविश्वास और स्वाभिमान जैसी ऊर्जा को अंतर्मन में बिठाने का भी काम किया है। वे रूढ़िवादी परंपराओं में जकड़े वर्चस्वादी समाज को सोते से जगाने का काम बखूबी करती दिखाई देती है। जीवन को परखती-खंगालती उनकी रचनाएँ सामाजिक रीतियों-कुरीतियों के अनेक पक्षों को अपने में समेटे हुए हैं। मैत्रेयी का 'चाक' उपन्यास ग्रामीण परिवेश में स्त्री चेतना को आख्यायित करता है। उपन्यास की नायिका सारंग है। वह अपनी फुफेरी बहन रेशमा की हत्या से विद्रोह हो उठती है। इस गाँव की औरतें पुरूष, अंह, शील और सतीत्व की रक्षा के नाम पर बलि चढ़ा दी जाती है। इसका वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया है कि-'इस गाँव के इतिहास में दर्ज दस्तानें बोलती है-रस्सी के फंदे पर झूलती रूखमणी, कुएँ में कूदने वाली समदेई, करबन नदी में समाधिस्थ नारायणी-ये बेबस औरतें सीता मईया की तरह 'भूमि प्रवेश' कर अपना शील-सतीत्व की खातिर कुरबान हो गई। ये ही नहीं, और न जाने कितनी.....।'[9] मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ब्राहम्णवादी-सामंतवादी पूँजीवादी, बौद्धिक सोच को तोड़ते हुए वंचित, उत्पीड़ित समूहों-आदिवासी, दलित, पिछड़ी जाति की स्त्रियों के क्षमता कों उन्मुक्त और सक्रिय करने पर बल दिया है। इनके उपन्यासों में स्त्री का संघर्ष दरअसल एक ऐसी समाज व्यवस्था के लिए संघर्ष है जिसमें बराबरी हासिल करने की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ मौजूद हो। इसी तरह से चित्रा मुद्गल की उपन्यास 'नाला सोपारा' प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' मधु कांकरिया के उपन्यास 'ढलती सांझ का सूरज', मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' साथ ही डॉ. जया वादवानी, डॉ. उर्मिला शुक्ल की कहानियों में भी नारी अस्मिता को लेकर, संघर्ष की आधुनिक समस्याओं को रेखांकित किया गया है।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि महिला कथाकारों का साहित्य वर्तमान सामाजिक परिवेश से जूझते व्यक्ति के दुखों का साहित्य है। वह जिन्दगीं के सही अर्थो में जीने का पर्याय बनकर टुकड़ों में बँटी आदमी की जिन्दगी को जोड़ने का प्रयास करता है। रचनाकारों ने समाज के विभिन्न मुद्दों पर अपनी लेखनी चलायी है। इनमें समाज के वे तबके शामिल है जिन्हें सदियों से उपेक्षित तथा शोषित किया जाता रहा है। महिला कथाकारों ने कथा साहित्य समाज में हो रहे बदलाव के लिए जन संघर्ष के प्रति पूर्ण समर्पित है। इस दौर की महिला कथाकार मुक्ति का मार्ग तलाशती आधुनिक स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को परत-दर-परत उकेरती नजर आती है। चाहे वह स्त्री की 'आर्थिक स्वायत्तता' का प्रश्न हो, या 'यौन सुचिता' का प्रश्न हो या स्त्री के अन्त: संबंधों का प्रश्न हो, अथवा उनकी स्वतंत्र सत्ता एवं अस्तित्व का प्रश्न हो, चाहे पुरूष के हवस का शिकार होती स्त्री का प्रश्न हो, या आधुनिक स्त्री का प्रतिक्रियात्मक आक्रोश हो। उनकी पीड़ा, त्रासदी, संत्रास तथा संपूर्ण कष्टपूर्ण जीवन को महिला रचनाकारों ने सर्जनात्मक स्तर पर पुरूष-समाज की स्त्री-विरोधी मूल्य-मर्यादाओं, मिथकों, आदर्शो एवं विधि-निषेधों आदि की कड़ी आलोचना करते हुए उन्हें तोड़ने के लिए अपने कथा-साहित्य में अपने मन तथा विचार के अनुकूल 'स्त्री-पात्रों' को गढ़ा है और लेखन में उन्हें प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया है। जिससे समाज में नवचेतना का संचार हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह, डॉ. त्रिभुवन - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद - पृष्ठ - 31
2. शुक्ला, डॉ. इन्दू - साहित्यकार भागवतीचरण वर्मा - पृष्ठ - 01
3. वर्मा, महादेवी - श्रृंखला की कड़ियाँ, अपनी बाते से - आमुख
4. यादव, राजेन्द्र, मन्नू भण्डारी - एक इंच मुस्कान - पृष्ठ - 192
5. शिवानी, कृष्ण कली -पृष्ठ - 130
6. मोहन, डॉ. नरेन्द्र - आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ - पृष्ठ - 130
7. सोबती, कृष्णा - सूरजमुखी अँधेरे के - पृष्ठ - 85
8. प्रियंवदा, उषा - पचपन खम्भें लाल दीवारें - पृष्ठ - 26
9. पुष्पा, मैत्रेयी - 'चाक' - पृष्ठ - 07

****